International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(1): 144-146

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(1): 144-146
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-11-2017
Accepted: 17-12-2017

डॉ0 कुमर पाल
सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग,
श्री ब्रजेन्द्र जनता महाविद्यालय
बिसावर, हाथरस, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ0 कुमर पाल
सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग,
श्री ब्रजेन्द्र जनता महाविद्यालय
बिसावर, हाथरस, उत्तर प्रदेश, भारत

मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार कर्म और संस्कारों का विवेचन

डॉ0 कुमर पाल

प्रस्तावना

यह तथ्य सर्वथा सत्य एवं सर्वमान्य है कि कर्म और संस्कार भारतीय संस्कृति का अनिवार्य एवं अपरिहार्य पहलू रहा है। संसार में आते ही प्राणी ब्रह्मा जी के द्वारा सृष्टि काल में ही कर्मों से बांध दिया जाता है और वह उन्ही संस्कारों में बंधकर अपने–अपने ब्रह्मा द्वारा निर्धारित कर्म करने लगता है। मनुस्मृति में चारों वर्णों के कर्मों का विधान ब्रह्मा जी के द्वारा बतलाकर स्मृतिकार ने कर्म सम्पादन में संस्कारों की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया है। स्मृतिकार का कहना है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा के लिए तेजस्वी ब्रह्मा ने मुख, बाहू, जंघा और पैर से उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्मों को स्वयं बनाया। इन्ही कर्मों के संस्कारों में बांधकर चारों वर्ण कर्म करते रहते हैं।[1]

मनु ने संसार में जीवों के कर्मों में संस्कारों को अनिवार्य माना है। मनुस्मृति में कहा गयाा है कि सृष्टि के आदि में परमपिता ने जिस जाति विशेष को जिस कार्य में लगाया, वह संस्कारवश उसी प्रकार का कार्य करने लगी, जैसे व्याघ्रादि को हरिणों को मारने में नियुक्त किया, तो वे वही कार्य करते रहे। वे बार–बार जन्म धारण करने पर भी संस्कारवश अपने कर्मों को करते हैं–

"यं तु कर्माणि यस्मिन् सन्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः।
सतदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः।।"[2]

संस्कारवश स्वाभाविक कर्मों की संलिप्तता को विविध उदाहरणों से प्रस्तुत करते हुए मनु ने कहा कि जब ब्रह्मा ने सृष्टि की तब जिस जीव को जो कर्म दिया गया, वह उसी में लग गया जैसे– सिहांदि हिंसक कर्मों में लग गये, मृगादि बार–बार जन्मों में अहिंसक कर्म करते हैं, ब्राह्मणादि कोमल कर्मों में संलग्न रहते हैं। क्षत्रियादि कठोर कर्म करते हैं, बहुत से प्राणी संस्कार वश धर्म कार्यों में संलग्न रहते हैं तथा बहुत से संस्कारों के अधीन अधर्म किया करते हैं।[3]

संस्कारों की कर्म परक महत्ता का प्रतिपादन करते हुए मनु ने कहा है कि द्विजातियों को वैदिक कर्मों द्वारा गर्भाधानादि शरीर के संस्कार करने चाहिए, जो इस लोक और परलोक दोनों में पापों को विनिष्ट करने वाले होते हैं–

"वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निशेकादिद्विजन्मनाम्।
कार्यः षरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।।"[4]

मनु का कहना है कि संस्कारों में गर्भ की शुद्धि के लिए किये जाने वाले हवनादि, जातिकर्म, चूड़ाकरण और उपनयन आदि संस्कारों के करने से द्विजातियों के बीज और गर्भ के दोष दूर हो जाते हैं।[5] संस्कारों में जातिकर्म संस्कार के विषय में मनुस्मृति में कहा गया है कि नालच्छेदन के पहले पुरुष का जातिकर्म संस्कार किया जाता है। इसके बाद ही उस बालक का सुवर्ण, मधु और घी को वैदिक मंत्रों द्वारा चटाना चाहिए।[6]

मनु ने निष्क्रमण संस्कार का वर्णन करते हुए कहा है कि जन्म से चौथे मास में बालक को घर से बाहर निकालना चाहिए। इसी को निष्क्रमण कहते हैं और छठे मास में अन्न प्राशन कराना चाहिए अथवा कुल की रीति के अनुसार जो मंगल हो उसे करना चाहिए।[7] मुण्डन संस्कार की पद्धति के विषय में मनुस्मृति में कहा गया है कि सभी द्विजातियों का धर्म के लिए पहले या तीसरे वर्ष में मुण्डन करना चाहिए।[8] उपनयन संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। मनु के अनुसार गर्भ से आठवे वर्ष में ब्राह्मण का, ग्यारहवे वर्ष में क्षत्रिय का और गर्भ से बारहवे वर्ष में वैश्य का उपनयन

संस्कार होना चाहिए।[9] इसके साथ ही ब्रह्मतेजाभिलाषी ब्राह्मण का गर्भ से 5वें वर्ष में, बलाभिलाषी क्षत्रिय का छः वर्ष और धनाभिलाषी वैश्य का आठवें वर्ष में उपनयन करना चाहिए।[10] उपनयन संस्कार की अन्तिम सीमा को बतलाते हुए मनु ने कहा है कि 16 वें वर्ष तक ब्राह्मण का, 22वें वर्ष तक क्षत्रिय का, 24 वर्ष तक वैश्य का उपनयन हो सकता है। इन समयों के पश्चात् यथासमय संस्कार न होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सावित्री से पतित होकर समाज से वहिष्कृत और व्रात्य होते हैं।[11]

मनुस्मृति में केशान्त संस्कार के विषय में कहा गया है कि ब्राह्मण का 16वें वर्ष में, क्षत्रियों का 22वें वर्ष में और वैश्य का 24वें वर्ष में केशान्त संस्कार होना चाहिए।

"केषान्तः शोऽषे वर्शे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंषे वैष्यस्य द्वयाधिके ततः।।"[12]

विवाह संस्कार मानव जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। मनु ने विवाह संस्कार को अनिवार्य संस्कार मानकर ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच आठ प्रकार के विवाह माने हैं–

"ब्राह्मो दैवतस्तथैवार्शः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसष्चैव पैषाचष्चाश्टमोऽधमः।।"[13]

मनु के अनुसार इनमें ब्राह्मण को आदि से छः प्रकार के विवाह, क्षत्रिय को आसुरादि क्रम से 4 प्रकार के और वैश्य तथा शूद्र को राक्षस रहित तीन प्रकार के विवाह धर्मानुकूल कहे गये हैं–

"शडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान।
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्वम्यनिराक्षसान्।।"[14]

मनु ने कहा है कि गुरू से आज्ञा पाकर विधिपूर्वक समावर्तन संस्कार स्नानादि करके द्विज शुभ लक्षणयुक्त सजातीय कन्या से विवाह करे।

जो कन्या माता की सात पीढ़ी के भीतर की न हो, पिता के सगोत्र की न हो, वह द्विजातीयों के व्याहने और सन्तानोत्पादन करने योग्य होती है। गाय, बैल, बकरी, भेड़ और धनधान्य से पूर्ण धनी होने पर भी नीचे कुलों से सम्बन्ध न करे।[15] जिस कन्या के बाल भूरे हों, जिसके अधिक अंग हों, जैसे– हाथ पैरों में छः उँगलियाँ हों, जो रुग्णा हो, जिसके शरीर में रोम न हो, या बहुत हों, जो बहुत बोलने वाली हो, जिसकी आँखें पीली हों, उसके साथ ब्याह न करें। नक्षत्र, नदी, म्लेक्ष, पहाड़, पक्षी, साँप और दासी के नाम पर जिसका नाम हो उससे तथा डरावने नामवाली कन्या से व्याह न करे। जिसका कोई अंग बिगड़ा न हो, जिसका सुन्दर नाम हो, हंस या हाथी की मन्द गति हो, सूक्ष्म रोम, केश और छोटे दाँतों वाली और कोमलांगी हो, उससे व्याह करे। जिसके भाई न हो अथवा जिसके बाप को कोई न जानता हो तो, ऐसी पुत्रिका, से धर्म की आशंका से बुध्दिमान् पुरुष उस लडकी के साथ व्याह न करे।[16]

ब्राह्मण के लिए प्रथम चार विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्रजापात्य तथा अन्तिम चार क्षत्रिय के लिए और वैश्य तथा शूद्र के लिए आसुर विवाह को पण्डितगण श्रेष्ठ समझते हैं। प्रजापत्य आदि पॉच विवाहों में प्रजापत्य, गान्धर्व और राक्षस धर्मानुकूल और दो आसुर और पैशाच अधर्मयुक्त कहे गये हैं इसीलिए ब्राह्मण को किसी भी अवस्था में आसुर और पेशाच विवाह नहीं करना चाहिए।[17]

अच्छे शील, स्वाभाव वाले वर को स्वयं बुलाकर उसे अलंकृत और पूजित कर देना कन्या ब्राह्म विवाह है। यज्ञ में सम्यक्, प्रकार से कर्म करते हुए ऋत्विज को अलंकृत कर कन्या देने को दैव विवाह कहते हैं।[18] वर से एक या दो जोड़े गाय, बैल, धर्मार्थ लेकर विधि पूर्वक कन्या देने को आर्ष विवाह कहते हैं। "तुम दोनों एक साथ गृह धर्म की रक्षा करो" यह कहकर और पूजन करके जो कन्यादान किया जाता है वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है। कन्या के पिता आदि को और कन्या को भी यथा शक्ति धन देकर स्वच्छन्दता पूर्वक कन्या को ग्रहण करना आसुर विवाह है। कन्या और वर की इच्छा से दोनो का संयोग होना गान्धर्व विवाह है। यह काम–भोग की इच्छा से होता है। यह कन्या मैथुन के लिए हितकर है, बाधा डालने वाले को मारकर, घायलकर, घर के दरवाजे को तोड़कर, रोती हुई घर से बलपूर्वक हरण कर ले जाने को राक्षस विवाह कहते हैं। सोई हुई, मद मतवाली या जो कन्या पागल हो उसके साथ एकान्त में सम्भोग करना विवाह में अत्यन्त निष्कृष्ट पापों से भरा हुआ आठवाँ पैशाच विवाह है।[19]

ब्राह्मण को जलदान पूर्वक कन्यादान करना श्रेष्ठ है। क्षत्रिय आदि वर्णों का परस्पर दाता–ग्रहीता के वचन मात्र से कन्यादान हो सकता है।[20] ब्राह्म विवाह से उत्पन्न धर्मचारी पुत्र दस पीढ़ी पीछे और दस पीढ़ी आगे के पितरो को और इक्कीसवें अपने को नरक से उद्धार करता है। देव विवाह से जो पुत्र उत्पन्न होता है, सात पीछे के और सात आगे के; आर्ष विवाह से उत्पन्न पुत्र तीन पीछे और तीन आगे को तथा प्रजापत्य से उत्पन्न पुत्र छः पीछे के और छः आगे के पुरुषों को तारता है। क्रम से ब्रह्मादि चार विवाहों से ब्राह्मवर्चस , तेजस्वी और शिष्टजनों से मान्य पुत्र उत्पन्न होते हैं। ये रूपवान्, सात्विक तथा गुणी, धनवान्, यशस्वी, समृद्धशाली और शतायु होते हैं।[21] शेष चार विवाहों से उत्पन्न पुत्र, निर्दयी, झूठे, वेद निदक और धर्मद्वेषी होते है।[22] श्रेष्ठ स्त्रियों के साथ विवाह करने से उससे श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है और निन्दित विवाह से निन्दित सन्तान का जन्म होता है, इसलिए निन्द्य विवाह न करें। सवर्ण कन्या के विवाह में ही पाणिग्रहण–संस्कार बताया गया है।[23]

समग्र रूप से निष्कर्ष यह है कि कर्म और संस्कार पारस्परिक अभिनन्ता से मंण्डित रहें। भरतीय मनीषियों ने जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव को विविध संस्कारों में आबद्ध किया है। इन संस्कारों से आबद्ध होकर ही मानव प्राणी अपनी जीवन यात्रा पूर्ण किया करता है। संस्कारों में आबद्ध होकर किये जाने वाले सांसारिक कर्म सदैव व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिए कल्याणकारक हुआ करते हैं। मनुस्मृति में स्थान–स्थान पर विविध संस्कारों के वर्णनों के साथ–साथ उन संस्कारों में किये जाने वाले कर्मों का विवेचन किया गया है।

याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में संस्कारों का विशद् विवेचन प्रस्तुत किया है स्मृतिकार के अनुसार वैदिक विधि से गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक संस्कारों की सम्पन्नता के कारण ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, द्विज कहे जाते हैं।[24]

स्मृतिकारों ने संस्कारों का नामोल्लेख एक साथ न करके स्थान–स्थान पर किया है। सर्वप्रथम गर्भावस्था से चूणाकरण तक के संस्कारों का प्रस्तुतीकरण करते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा कि गर्भाधान संस्कार, ऋतु काल में, पुंसवन गर्भ संचलन से पूर्व तथा छठे या आठवे महीने में सीमन्तोनयन और बालक के उत्पन्न होने पर जातकर्म संस्कार होता है।[25]

जन्म के ग्यारहवे दिन नामकरण संस्कार, चतुर्थ महीने में निष्क्रमण, छठे में अन्न प्राशन और समयानुसार चूडाकरण करना चाहिए।[26] इन संस्कारों के महत्व को बतलाते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा कि इन संस्कारों के द्वारा बीज (शुक्र) एवं गर्भ से सम्बद्ध पाप शान्त होता है।

"एवमेनः षमं याति बीजगर्भषुभवम्।"[27]

संस्कारों में प्रमुखतम उपनयन संस्कार का वर्णन करते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा कि गर्भ के आठवें वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार होता है। क्षत्रिय का ग्यारहवे तथा वैश्यों के बारहवे वर्ष में होता है।

"गर्भाश्टमे बाऽब्दे ब्राह्मण स्योपनायनम्।
राज्ञामेकादषे सैकेविषायेके यथाकुलम्।।"[28]

इसी प्रकार उपनयन संस्कार का अन्तिम काल सोलहवां, बाईसवां और चौबीसवां होता है।[29]
उपनयन संस्कार के पश्चात् के केशान्त या गोदान संस्कार गर्भ के सोलहवें वर्ष में माना गया है।

"केषान्तष्चैव शोडषे।"[30]

समावर्तन संस्कार का यद्यपि याज्ञवल्क्य ने साक्षत् वर्णन नहीं किया, लेकिन उसे स्पष्ट करते हुए उसका शिक्षा के पश्चात् स्नान करने के रूप में प्रस्तुतीकरण किया है। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि वेदाध्ययन या व्रतो या दोनों को पूर्ण करके गुरू की आज्ञा से उसे दक्षिणा देकर ब्रह्मचारी स्नान करे–

"गुरवे तु वरं दत्वा स्नायादवा तदुनज्ञया।
वेदं ब्रतानि वा पारंनीत्वा ह्युभयेव वा।।"[31]

याज्ञवल्क्य ने विवाह संस्कार को पूर्ण रूपेण स्वीकार करते हुए कहा है कि ब्रह्मचर्य से च्युत न हुए ब्रह्मचारी को शुभ लक्षणों वाली, पहले किसी अन्य पुरुष को न दी गई और अन्य पुरुष से अभुक्त सुन्दरी, असपिण्ड तथा आयु एवं शरीर प्रमाण में अपने से छोटी स्त्री से विवाह करना चाहिए–

"अविलुप्त ब्रह्मचर्यों लक्षण्यां स्त्रियमुदवहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्।।"[32]

इसके अतिरिक्त वह कन्या रोगी न हो, भाई वाली होनी चाहिए तथा अपने गोत्र की और प्रवर नहीं होनी चाहिए। वह माता और पिता के कुल में पाँच और सात पीढ़ी ऊपर होनी चाहिए।[33] उसका कुल दस पीढ़ियों से श्रोत्रियों का महान् कुल होना चाहिए।[34] प्रशस्त कुल से भी कभी संचारी रोगों से युक्त कन्या न ले।[35] याज्ञवल्क्य के अनुसार कन्या के साथ वर में भी विवाह के लिए ये गुण होने चाहिए। इन गुणों के अतिरिक्त वर सवर्ण और श्रोत्रिय होना चाहिए। उसके पुंसत्व की परीक्षा प्रयत्नपूर्वक की गई हो तथा वह युवक लोकप्रिय होना चाहिए।

"एतैरेव गुणैयुक्तः सवर्णः श्रोत्रियोवरः।
यत्नपरीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान्जनप्रियः।।"[36]

याज्ञवल्क्य स्मृति में विवाह के विविध प्रकारों पर भी विचार किया गया है। स्मृतिकार के अनुसार ब्राह्म विवाह वह है, जिसमें वर को आमंत्रित कर उसे वस्त्राभूषण से अलंकृत कन्या प्रदान की जाती है। ऐसे विवाह से उत्पन्न पुत्र दोनों ओर की इक्कीस पढ़ियों को पवित्र करते हैं।[37] जब यज्ञानुष्ठान होने पर ऋत्विज को यथाशक्ति अलंकृत करके कन्या दी जाती है। तो वह दैव विवाह होता है। जब दो गायें लेकर कन्या दी जाये,[38] तो वह आर्ष विवाह होता है। जो कन्या इच्छुक को "साथ–साथ धर्म का आचरण करो" कहकर दी जाती है, वह प्राजापत्य विवाह होता है।[39] धन लेकर जो कन्या दी जाती है वह आसुर विवाह होता है। परस्पर अनुराग से गान्धर्व विवाह होता है और छल से कन्या का हरण किये जाने पर पैशाच विवाह होता है।[40]
कन्या दान के विषय में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि पिता, पितामह, भ्राता, उस कुल का कोई व्यक्ति और माता से क्रमशः पूर्व के अभाव में तदुत्तरवर्ती प्रकृतिस्थ होने पर कन्यादान करने वाले हैं।[41] कन्या को उचित वर को समय पर न देने वाला अधिकारी कन्या के प्रत्येक ऋतुकाल में भ्रूण हत्या के पाप को पूर्ण रूप से प्राप्त करता है। कन्यादान के दाताओं के अभाव में कन्या स्वयं उपर्युक्त लक्षणों से युक्त वर का वरण कर ले।[42]
उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य स्मृति में कर्म सम्पादन में संस्कारों को विशेष महत्वपूर्ण माना गया है। संस्कार मानव जीवन में शुद्धता, सौन्दर्य एवं व्यवस्थित जीवन शैली काल से ही संस्कारों को जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पन्न करने की व्यवस्था की गई है। इन संस्कारों की परिधि में बँधकर ही प्रत्येक कार्य पूर्ण होता है, जिससे कर्म सम्पन्नता में शुद्धता एवं निरन्तरता विद्यमान रहे। महर्षि याज्ञवल्क्य का विश्वास है कि संस्कारों में आवद्ध होकर कर्ता के द्वारा जीवन में किये जाने वाले कर्म श्रेय एवं प्रेय की ओर उनमुख करते हैं।
इति।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. मनुस्मृति, 1/87
2. मनुस्मृति, 1/28
3. मनुस्मृति, 1/29
4. मनुस्मृति, 2/26
5. वही, 2/27
6. वही, 2/29
7. मनुस्मृति, 2/34
8. वही, 2/35
9. वही, 2/36
10. मनु स्मृति, 2/38
11. वही, 2/39
12. वही, 2/65
13. मनुस्मृति, 3/20
14. वही, 2/23
15. मनुस्मृति, 3/4, 5, 6
16. वही, 3/8–11
17. वही, 3/24, 25
18. वही, 3/26
19. मनुस्मृति, 3/27–34
20. मनुस्मृति, 3/35
21. वही, 3/37–40
22. वही, 3/41
23. वही, 3/42, 43
24. याज्ञ0 आ0, 1
25. याज्ञ0 आ0, 2/11, 12
26. वही, 13
27. वही, 14
28. वही, 37, 38
29. याज्ञ0 आ0, 36
30. वही, 51
31. याज्ञ0 आ0, 52
32. वही, 53
33. वही, 53
34. वही, 54
35. याज्ञ0 आ0, 55
36. वही, 56
37. वही, 57
38. याज्ञ0 आ0, 58
39. वही, 59
40. वही, 60
41. वही, 61
42. याज्ञ0 आ0, 63, 64